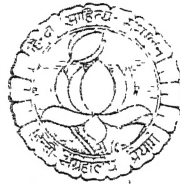


रुचिर ग्रंथमाला का द्वितीय पुष्प

शृङ्गार-शतक

लेखक

साहित्यविशारद पं० बलदेवप्रसादजी मिश्र

एम० ए०, एल० एल० बी०, एम० आर० ए० एस०

असिस्टेंट एडमिनिस्ट्रेटर, रायगढ़ सी० पी०

रचयिता "शङ्करदिग्विजय" "असत्य संकल्प" आदि

प्रकाशक

पं० बलभद्रप्रसाद मिश्र, विशारद

जनरल कन्ट्राक्टर

राजनादगाँव, सी० पी०

मुद्रक

रघुनन्दन शर्मा, हिन्दी प्रेस, प्रयाग

प्रथम बार १०१० }

{ मूल्य १ प्रति ।)
मूल्य २ प्रति १)

विशेष—स्थायी ग्राहकों को २५% कमीशन और ५० से अधिक पुस्तकें एक साथ लेने वालों को ३०% कमीशन मिलेगा ।



सेवा में,

श्रीराजा चन्द्रधरसिंहजी महाराज

रूलिंग चीफ़, रायगढ़ स्टेट (सी० पी०)

मान्यवर महाराज,

भारत की वर्तमान अवस्था में रसराज के इस रुचिर शतक को आपके समान महाराज आश्रय न देंगे तो कौन देगा ? इसके छन्द सुनने में आपने जो उत्साह प्रदर्शित किया है और समर्पण स्वीकृति की जो उदारता दिखाई है उसे ही मैं अपने परिश्रम का वास्तविक मूल्य मानता हूँ। आपके समान गुणज्ञ नरेश के कर-कमलों में यह शतक अर्पण करते हुए मुझे जो संतोष और आनन्द प्राप्त हो रहा है वह और किसी प्रकार मिल सकता या नहीं इसमें सन्देह ही है।

आपका अनुगृहीत सेवक—

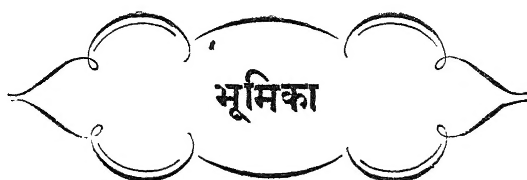
बलदेवप्रसाद मिश्र

दो शब्द

एक तो अब ब्रजभाषा ही के दिन गये और दूसरे शृंगार रस को तो अब कोई पूछता तक नहीं है। चाहिए भी ऐसा ही। फिर ऐसी अवस्था में यह पुस्तक क्यों छपाई जा रही है इसका कारण बतला देना आवश्यक जान पड़ता है।

जब मैं कालेज का विद्यार्थी था और हिन्दी की विशारद परीक्षा के लिए तैयारियाँ कर रहा था, उसी समय उमंग आई कि एक शृंगार-शतक तैयार किया जाय क्योंकि उस समय मुझे विशारद की परीक्षा के सिलसिले में ब्रजभाषा और शृंगार रस के अनेक ग्रंथ देखने का अवसर प्राप्त हुआ था। विद्यार्थी-जीवन तो था ही, इसलिए उमंग आई और पूरी कर दी गई। मित्र-मण्डल में यह शतक अनेकों को बड़ा रुचिकर जँचा। उन्होंने आग्रह किया कि मैं इसे छपवाऊँ परन्तु मेरा साहस न हुआ आखिर अपने बचाव के लिए मैंने यह बहाना निकाला कि जब इसी की जोड़ का वैराग्य शतक तैयार हो जावे तब इसे छपवाऊँगा। मित्रों का आग्रह चालू ही रहा और अन्त में वैराग्य-शतक भी तैयार हो ही गया। तब तो कोई बहाना बाकी न रहा। मैंने भी सोचा कि यद्यपि शृंगार रस के दिन गये फिर भी उसके प्रेमी अभी पर्याप्त संख्या में निकल पड़ेंगे। और नहीं तो मेरी मित्र-मंडली का संतोष तो अवश्य होगा। आज-दिन भी अनेक सज्जन नायक नायिका भेद के साथ शृंगार रस को शास्त्रीय ढंग से पढ़ते हैं। इसलिए आशा है कि यह ग्रंथ उनका कुछ न कुछ मनोरंजन अवश्य करेगा।

—बलदेवप्रसाद मिश्र



भूमिका

इस ग्रन्थ का विषय चार खण्डों में विभक्त किया गया है। ग्रन्थारंभ की प्रार्थना और विषय प्रवेश के बाद रूप खण्ड रखा गया है जिसमें पहले नायिका की परिभाषा और फिर नायिका की अवस्था अथवा आयु के अनुसार बाला, वयःसन्धिवती और तरुणी का वर्णन किया गया है। लड़कपन के अन्त और यौवन के आरम्भ की अवस्था को वयःसन्धि कहते हैं। इस अवस्था में रहस्यमय अस्फुटित यौवन के चमत्कार के कारण अनेक अंगों में अनेक तरह के परिवर्तन प्रारम्भ हो जाते हैं। कवि लोग उन्हीं का वर्णन अक्सर किया करते हैं। तारुण्य में तो सौन्दर्य पूर्ण परिस्फुट रहता है। उस समय तो संसार के जितने सौन्दर्यमय पदार्थ हैं वे सब उस तरुणी नायिका के सौन्दर्य के आगे फीके जँचते हैं। नख से शिख तक उसके प्रत्येक अंग ही अलौकिक लावण्य वाले और परम रमणीय जान पड़ते हैं। उन सुघर अङ्गों पर शृङ्गार भी कर लिया जाय तो फिर उस छटा का कहना ही क्या है। इस खण्ड में शृङ्गारिक सौंदर्य का चरम

उत्कर्ष बताने के लिए इन्हीं सब वर्णनों का समावेश किया गया है।

इसके बाद आता है **अनुराग्-खण्ड**। जहाँ सौन्दर्य विकसित और स्फुट हुआ तहाँ अन्योन्य आसक्ति होना भी स्वाभाविक है। नायिका की छबि नायक के हृदय में घर करती है और नायक की छबि नायिका को मुग्ध कर देती है। इस प्रकार अनुराग उत्पन्न होकर वृद्धि को प्राप्त होता है। यौवन के रहस्यमय भवन में पदार्पण करते ही अनुराग का फन्दा गले आ पड़ता है। कुलमर्यादा और लोकलज्जा के कारण मन की बात मन ही में छिपा कर रखी जाती है, परन्तु वही बात भीतर ही भीतर अङ्गार के समान मन को जलाया करती है। एक तो वह बात साफ़ तौर पर प्रगट ही नहीं होती और यदि प्रगट भी हो गई तो समाज के बन्धन कुछ ऐसे जटिल और विचित्र हैं कि ऐसे संयोग की पूर्ति ही नहीं होने पाती। यदि विधाता की परम कृपा से ऐसे प्रेमियों का विवाह संस्कार बन जाता है तब तो फिर उनके सौभाग्य का ठिकाना ही नहीं रहता। पति पत्नी पर सौ जान से न्योछावर हो जाता है और पत्नी तो पतिमयी ही बन जाती है। यही सब विषय इस खण्ड में है।

संयोग-वियोग खण्ड में पति-पत्नी के शृङ्गारमय भावों को व्यक्त करने की चेष्टा की गई है। विवाह के अनन्तर

प्रथम समागम के समय अक्सर नायिका को उसकी सखियाँ कई तरह के पाठ पढ़ाया करती हैं। यदि नायिका परम अनुरागवती हुई तब तो उसे समागम के समय कुछ ज्ञात ही नहीं होता कि कहाँ क्या हो गया। हाँ! अलबत्तः रतान्त चिह्न भले ही दिखाई पड़ें। परन्तु जिनमें अनुराग की इतनी अधिक मात्रा नहीं रहती वे पुरुष की अभूतपूर्व पाशव प्रेरणायें देख कर अवश्य क्षुब्ध हो उठती हैं और लज्जा की प्रबलता के कारण उनका रतिभाव बिलकुल दब जाता है। ऐसी ही नायिका को नवोढ़ा कहते हैं। अनुराग की नवीनता के कारण पति को नवोढ़ा नायिका ही विशेष रुचिकर होती है। इसलिए वही स्वभावतः मानिनी और स्वाधीनपतिका भी हो सकती है। क्रमशः उसमें भी अनुराग की वृद्धि होती है और तब वह लज्जा और अनुराग को समान रूप से धारण कर के मध्या कहाती है। वह श्रृङ्गार कर के वासकसज्जा बनती है, पति की उत्कण्ठा में उत्कण्ठिता बनती है और लाज के कारण पति की रति में बाधा देकर पीछे दुःखिता (कलहान्तरिता) भी बनती है। जब कभी पति के परदेश-गमन की बात चलती है तब वह अत्यन्त खिन्न और दुःखित बन जाती है। जब पति परदेश चला जाता है या जब वियोगावस्था आ जाती है तब वह प्रत्येक ऋतु ही में विरह ज्वाला से जर्जर हुआ करती है। वह कल्पित दूतों के द्वारा संदेशे भिजवाया करती है। उन्माद में आकर न जाने क्या

क्या किया करती और क्या क्या कहा करती है। दयार्द्र हृदयों को उस पर दया आती है और उनके द्वारा नायक अथवा पति के पास प्रार्थनायें भी कभी कभी पहुँचाई जाती हैं। नायक स्वयं ही विरह से विह्वल होकर घर की ओर चल दिया करता है और इस प्रकार पुनः वह चिर-अभिलषित सुखद संयोग प्राप्त हो जाता है। विरह के उत्ताप ही में तो प्रेम का खरा सोना चमक उठता है और इसीलिए विरहिणी नायिका जब आगत-पतिका बनती है तब उसमें अधिकतर रति की भावना लज्जा को परास्त कर देती है और इसीलिए वह बहुधा प्रौढ़ा के समान आचरण करती है। संयम के बाद इच्छानुकूल संयोग ही सन्तानोत्पत्ति का कारण हुआ करता है और सन्तान का मुख देख कर ही गार्हस्थ्य के संयोग-वियोग का सुफल प्राप्त होता है। यही सब विषय इस खण्ड में कहा गया है।

चौथे खण्ड अर्थात् **परिशिष्ट खण्ड** में कलुषित प्रेम की कथा है। मनुष्य नवीनता का प्रेमी है। एकपत्नी-व्रती बिरले ही हुआ करते हैं। अधिकांश में तो मनुष्य आत्मा के सौंदर्य के प्रेमी न होकर शरीर-सौंदर्य के प्रेमी ही हुआ करते हैं। जब पत्नी का शरीर सौंदर्य पुरुष को विशेष मुग्ध नहीं करता और पुराना सा जँचने लगता है तब उसका मन-मधुप किसी नये ही पुष्प का पराग प्राप्त करने के लिए लोलुप हो उठता है। यदि वह अपने प्रयत्न में सफल हो गया तो कुछ दिनों में उस

की शरीर-चेष्टाओं इत्यादि ही से उसकी पत्नी को सत्य का पता चल जाता है। यदि पत्नी परम शीलवती या नवीना हुई तब तो वह हृदय मसोस कर ही रह जाती है, यदि प्रौढ़ा हुई तो लड़ पड़ती है अथवा अपनी व्यंग्योक्तियों से कपटी पति की कपट-वार्ताओं के छक्के छुड़ा देती है। यदि हृदय पर धर्म और शील की ढाल न रही तो वह भी किसी न किसी ओर ढुलक पड़ती है क्योंकि आख़िर वह भी तो वासनाओं से मुक्त नहीं रहती। यौवन की उमंग, पति की उपेक्षा, विलासी पुरुषों के प्रलोभन और कुटनियों के समान दूतियों के कुपरामर्श और कुकृत्य ही स्वकीया नायिका को परपुरुष पर आसक्त करके परकीया बना देते हैं। एक बार उस विषैली मादकता का आस्वादन कर लेने पर फिर तो वह नायिका स्वयं ही अपने प्रेमिक के लिए अभिसारिका बनती है (अर्थात् संकेत के एकान्त स्थलों पर अंधेरी रात में भी अकेली पहुँच जाया करती है)। वह प्रेमिक जब कभी दूसरी ही प्रेमिका के फंदे में फंस कर इसे खण्डिता (अर्थात् आशा की अपूर्ति में निराश हो जानेवाली) बनाता है तो भी यह क्षोभ, दुःख या क्रोध के चपेटे खाती हुई फिर भी उसी कलुषित प्रेम की उपासना में रत रहा करती है। वह वचन विदग्धा बन कर अपनी बात छिपाती है, दूसरों से प्रतिबोधिता होकर भी अपनी आदत नहीं छोड़ती तथा एकान्त स्थल में जाकर परपुरुषों को अपनी चेष्टाओं तथा

बचनचातुरी से आकृष्ट किया करती है और लक्षिता बन गई (अर्थात् पकड़ गई) तो सुरत-संगोपना होकर अपनी बचनचातुरी से वास्तविक बात का संगोपन (छिपाव) कर लिया करती है। यदि उन एकान्त संकेत स्थलों पर किसी ने आधिपत्य किया तो वह अत्यंत खिन्न होकर उनकी रक्षा का भरसक प्रयत्न करती है। इसी प्रकार वह निर्लज्जता धारण करते हुए मनुष्यों को भ्रष्ट करती हुई कुलटा बन जाती है। यदि विलासी पति और परकीया पत्नी का यह जोड़ किसी प्रकार चलता रहा तो ठीक ही है। अन्यथा यदि कपट प्रबंध और लज्जा के बंधन फीके जँचे तब तो वह गणिका ही बन जाती है और उसी में पुरुषों का सर्वस्व स्वाहा हो जाया करता है। भावों के इसी क्रम के अनुसार इस खण्ड में छन्दों का ऐसा ही क्रम मिलाया गया है।

यह अंतिम खण्ड अपने समाज की वास्तविकता का चित्र है और इसलिए यद्यपि इसमें आजकल की रुचि के अनुसार स्वकीया के सुंदर प्रेम की कहानी नहीं है तथापि इस कलुषित प्रेम का वर्णन भी समाज सुधारकों को अनेक अंशों में लाभप्रद प्रतीत हो सकता है।

—बलदेवप्रसाद मिश्र

श्री



प्रार्थना—

(१)

आधे अंग भसम सुगंधि सोहै आधे अंग
आधे गरे मुण्ड सोहैं आधे सुप्रसून माल।
आधे सीस जटाजूट आधे हैं अरालकेश*
आधे कटि बाघछाल आधे पट है बिशाल॥
आधे नर रूप आधे ललना ललाम रूप
देखि यह हाल भूले मनमथ हू के ख्याल†।
कवि राजहंस ऐसे एक जीव एक प्रान
एक देह गिरिजा गिरीश सुख दें रसाल॥

---

* घुँघराले बाल। † कामदेव।

आक्कथन—

(२)

रूप रस रंजित धरा के साजबाजन में
सब ते प्रथम छबि ही की गाथ गाई है।
सोऊ परिपूरन बखानी सुखदानी, सब-
विधिन सों रूरी कविता ही महँ पाई है॥
काव्य माँहि रस रसहू में है शृंगार रस,
ताहू में विभाव ही की महिमा सुहाई है।
रुचिर विभाव हू में " राजहंस " सुखसार
नायिका नवेली ही नितान्त मन भाई है॥

रूपखण्ड

नायिका—

(३)

तन सुबरन पै सरस रूप सोहै जेतो
तेती ताकी थिति गति सील गुन गायिका।
"राजहंस" झलकत जोबन सों अंग अंग
अँखियाँ बिसाल सुचि प्रेम परिचायिका॥
कुल बिभुता को दरपन मुख-भाव बन्यो
भूषन सरस साजि नैनरस पायिका* ।

---

* आखों को अमृत पिलानेवाली।

(३)

अस्तित बसन सों बदन दुति दूनी करि
दमकति जाति देखो दामिनी सी नायिका* ॥

बाला—

(४)

चंचल चाल चितौनि न चंचल चंचल कै चित तौंहु भ्रमावति ।
'हंस' गयंद समान न गौन तबौं निज भौन हिये में बनावति ॥
डीठि करै जेहि ओर तहैं सुख को चहुँधा बर स्रोत बहावति ।
बालहि में तौ इतौ करती तरुनी बनि काधौं करैगी कलावति ॥

(५)

वयःसन्धिवती—†

चरनन छाँड़ि चंचलाई अब नैनन में,
अपनो बनाय रही रुचिर अगार है ।
"राजहंस" त्योंही धीरताई मंजु नैनन की,
चरनन करि रही अपनो अधार है ॥
जाय रही सघन जघन‡ उरजन पर,
कटि को प्रदेस त्यागि गुरुता अपार है ।
तापै डीठि डारि मन थिर रहि जाँय कैसे,
थिर जब नाहीं ताको तन सुकुमार है ॥

---

* रूप, शील, गुण, यौवन, प्रेम, कुल, विभुता और भूषण इस प्रकार आठ अंगों से पूर्ण स्त्री को नायिका कहते हैं । † इस अवस्था में कमर पतली होने लगती है, स्तन तथा नितम्ब बढ़ने लगते हैं । गमन मंद होता है । आँखें चंचल होती हैं इत्यादि । ‡ नितम्ब प्रदेश ।

(६)

उरजनि उठनि बिलोकि बनिता की बीर !
काहे धौं तनैने नैन बाँकुरे बनत जात !
"राजहंस" हिय में सनेह को बिकास लखि,
काहे धौं अनंग रंग अंग में चढ़त जात ॥
जानि न परत भौंह कुटिल बिलोकि काहे,
चरन चलन में सुधीरता धरत जात !
जुगल नितंब गुरुता की दौर दौरि रहे,
कटि धौं बिचारी काहे लाजन मरत जात ॥

(७)

जेतो गजगौनी को जघन है बिसद होत
तेती तेती ताकी कटि पातरी परत जात ।
जेती जेती कटि खीन होति जाति तेते तेते
ताहि देखिबे को दोऊ उरज उठत जात ॥
जेते जेते उठत उरोज उर 'राजहंस'
तेती मुख माँहि भाव भंगिमा भरत जात ।
जेतो मुख भाव तेतो जमत हिये मों नेह
जेतो नेह तेतो नैन माँहि प्रगटत जात ॥

(८)

लरि लरिकाई सों हटाय ताहि "राजहंस"
जब ते मनोजराज मन में बसत हैं ।

(५)

तबतें न रैन दिन गहत सिधाई नेकु
उड़त परत हैं अधीरता धरत हैं॥
चौंकि चौंकि चहुँ ओर चौकड़ी भरत मनु
नलिन* कलिन पर और थिरकत हैं।
मेरे जान मैन भय मानि मन माँहिं सखि !
लोचन-कुरंग तुव कानन† भजत हैं॥

(६)

अज्ञात यौवना‡

दुख मैं निज कासों कहौं सजनी !
तन की गति अद्भुत ह्वै गई री।
नित घाँघरि लंक$ पै ढीली परै
थिरता अँखियान सों ख्वै गई री॥
हिय पै जुग आय फफोले उठे
मन की सो ढिठाइहु ध्वै गई री।
हँसतीं घरवारी कहौं जब मैं
नहीं कोऊ उपाय बतै गई री॥

---

* कमल। † जंगल तथा कान (तक)। ‡ जो यौवनागम के समय शरीर के परिवर्तन का रहस्य नहीं समझ सकती उसे अज्ञात-यौवना कहते हैं। $ कमर।

(१०)

प्रस्फुट सौन्दर्यवती तरुणी—

कंज प्रिय लागैं इत उत है मधुर चंद
वल्लरी मनोहर प्रसूनहु ललाम है।
हंस कीर कोकिल कपोत हैं कलित इत
उत "राजहंस" मृग मीन अभिराम है॥
जन मन रुचि है विषम, एक कँह एक
अपरहिं अपरहि सुखद निकाम है।
बिरची बिरंचि ने बिचारि यह बालवर
एकहि सबै विधि के सुखन को धाम है॥

(११)

*छबि बनिता की रबि सी अमन्द "राजहंस"
सीतल जुन्हाई सी महीतल पै छाजती।
मृदु अकलङ्क है मयंक† से मुखारबिंद
दामिनी सी बदन की दीपति हैं भ्राजती॥
चरन उषा से घन घन से घनेरे बार
तारन से तार सारी निसा सी बिराजती।
इन्द्र धनु रंग सो सुरंग चोल कसे चारु
नायिका नवेली है गगन सम राजती॥

---

* यहाँ से प्रकृति के भिन्न भिन्न पदार्थों (गगन, समुद्र, नदी, नगर, पंकज, लता, चिड़ीखाना इत्यादि) तथा नायिका में समानता विविध अलंकारों के प्रयोग से दिखाई जाती है। † चंद्रमा।

(१२)

करैं तप सीप परे जल में,
बनिबे को सुकानन के उपमान।
प्रवाल* पलोटत पायँ सदा
बिसराय मनोहरता को गुमान॥
हँसी महँ हीरे निछावरि होत,
मिटै रद सों मुकताहल मान।
कहाँ रतनाकर चाकर सो,
है कहाँ बनिता सुषमा की खदान॥

(१३)

जाँघैं हैं न रुचिर नवेली की जुगल ये तौ
नदियाँ अनूप संग संग बहि आई हैं।
भँवर बन्यो है तिनसों न नाभि सोहै यह
त्रिवली† नहीं है ये तरंगैं मन भाई हैं॥
रूप रासि नाहिं जलरासि यह 'राजहंस"
बार नहिं यह तौ सेवार स्यामताई है।
कल कल नाद है न यह कलनाद है
सुनद अहै यह तौ न बाल छबि छाई है॥

(१४)

मंजु मकरंद‡ हू सों सुन्दर सोहात गात
केस आगे अलि की अली|| है मौन ह्वै गई।

---

* मूंगा। † कटि पर पड़ी हुई तीन रेखाएं। ‡ पराग। || पंक्ति।

(१४)

नूतन पलास पाँति नैनन निहारि हारि,
सलिल की ओर निज देह डारि नै गई॥
"राजहंस" सुघर सरीर की लुनाई पेखि,
पानन की मंजु सुघराई धौं किते गई।
कंज-मद-गंजनी मनोज-मन-रंजनी,
सिंगार-सर माँहिं कैसी बाल है उदै भई॥

(१५)

उन्नत पहारन* सों दुसह दरारन† सों,
गज सुंड‡ भारन सों नेकहू न जो नयो।
पन्नग$, मतंग††, सिंह‡‡, विहँग॥, कुरंगन× सों,
"राजहंस" जो न एक छन हू तजो गयो॥
बेंत की लपनि+, सरिता के कलनादनि+,
सुलतिका+ लपेटनि को ठाठ जहँ है ठयो।
सुन्दरी के सुन्दर शरीर में विहार हेतु,
विरच्यो विरंचि ने प्रमोद बन है नयो॥

---

* स्तन इत्यादि। † कर्ण-रंध्र, नासिका-रंध्र, नाभि इत्यादि। ‡ ऊरू। $ केश। †† गमन। ‡‡ कटि। ॥ छन्द १९ के अनुसार कोई भी अंग। × दृग (नयन)। + विलास, हावभाव, वाणी आदि।

(१६)

दन्तन की पंक्ति कैधौं कुन्द-कुसुमित-डार,
अधर ललाई कैधौं पल्लव को राग है।
गोरो गात कैधौं सोन चम्पा को कुसुम,
"राजहंस" जाँघैं कैधौं कदली को पृथु भाग है।
कैधौं गुलाबास एक फलन में फूलि रह्यो,
कैधों यह माँग पर सोहत सोहाग है।
कैधौं यह नारि कैधौं कामिजन मानस को,
रुचिर बिलास धाम अनुपम बाग है।

(१७)

भौंर न, केसन की अवली, न कली; यह नैन लली के लखात है।
लाल प्रवाल न, है मधुराधर; पात नहीं यह कोमल गात है॥
हैं कुच, 'हंस' प्रसूनन के नहिं मंजुल गुच्छ सु द्वै सरसात है।
फूल सुवास न, है मुँह वास; न बेलि, सु या तौ नवेली* सुहात है॥

(१८)

राज है मनोज को उरोज रूप के हैं कोष†
अवयव नगर निवासी हैं चटकदार।
सुबरन‡ सरसत घरन घरन तहँ,
नैनई जहाँ पै हैं बटोहिन के बटपार$॥
"राजहंस" रुचिकर जघन सघन पर,
राजि रहे नृप के उतंग अमल अगार।

* नायिका। † खजाना। ‡ धन और सौंदर्य। $ डाकू।

(१०)

काको मन भ्रमत न नागरी गुनागरी के,
तन-नगरी को देखि देखि पतो बिसतार ॥

(१६)

"राजहंस" राजहंस को* निवास एक छोर,
एक ओर मोर को कलाप† रुचि लै रह्यो।
खंजन‡ के मध्य सुकराज$ निज वास करि,
कोकिल†† की ओर अति मोन ह्वै चितै रह्यो ॥
रुचिर कपोत‡‡ निज ग्रीवहिं मरोरि चारु,
चक्रवाक+ संग सैन मानो कछु कै रह्यो।
मेरे जान कामिनी के मिसु कामदेव जू को,
मंजु चिड़ीखानो निज बाँकी छबि दे रह्यो ॥

(२०)

जाको मुख देखि दुजराज हार मानै सदा
जाको गौन गजराज गरब गरावैरी।
लपि लपि लंक मान मर्दै मृगराजन को
उन्नत उरोज नगराजन नवावैरी ॥
जाको मंद गौन पेखि वारि जात "राजहंस"
मृदु गात फूल राज फीके दरसावैरी।

---

* हंस की सी चाल। † मोर की पूंछ सा कुसुम-गुम्फित बालों का जूरा। ‡ आँख। $ नाक। †† (वचन) मुख। ‡‡ गला। + स्तन।

(११)

ऐते राज राज हैं बिराजि रहे जाके अंग
तरुनि समाजन न काहे सो हरावैरी ॥

(२१)

पायँन के रंग सरस्सुति से, बदन गंग,
बेनी सीसरंगन कलिन्द कन्यका के हैं।
राजत अधर रंग, हीरा से दसन संग,
जापै सुमिसी के रंग रंग जमुना के हैं॥
कारे कारे तारे संग गोरे गोरे कोयेन पै
लाले लाले मद भरे रंग के भमाके हैं।
"राजहंस" एक ही की को कहै त्रिबेनी जू के
संगम अनेक अंग माँहिं अबला के हैं॥

(२२)

*केसरि मतंग संग संग रहैं "राजहंस"
चन्द्र चक्रवाक की मिताई मंजु लेख्यो मैं।

---

*रूपकातिशयोक्ति अलंकार के अनुसार केवल उपमान से ही उपमेय का बोध होता है। अतएव यहाँ पर जो 'केसरी' (सिंह) शब्द आया है उसको 'कमर' इस उपमेय का सूचक समझना चाहिये। (यही हाल छन्द नं० १९ और १५ का भी है) इस प्रकार केसरि से कटि; मातंग से ऊरू; चन्द्र से मुख; और चक्रवाक से स्तन; कीर से नाक और कोकिला से मुख (वचन के कारण) मृग से नयन तथा चाप से भौंह; कंज से शरीर तथा शीतकर से आनन; पन्नग से लट्टू तथा मयूर से बालों का कुसुम-

(२२)

कीर कोकिला को बंधु भाव सो निवास देख्यो
मृगन के सेवी से सुचाप युग पेख्यो मैं ॥
सीतकर संग पाय बिकसत कंज लख्यो
पन्नग मयूर एक संग तहँ देख्यो मैं ।
भाजि गये नियम नवेली को शरीर त्यागि
मंजुल तपोबन सो ताहि अवरेख्यो मैं ॥

(२३)

नखशिख—

लोटत तिहारे हियरे पै लटकारे तऊ
देखत ही औरन के हियरे बिदारे हैं ।
चारु चन्द चूमन को सहज सुभाव तजि
'राजहंस' ताकी दुति दूनी निरधारे हैं ॥
छनहूँ न छाँड़त तिहारो जऊ संग तऊ
कामिन की आँखिन सों टरत न टारे हैं ।
ऐरी निरदयिनी फँसाय भरमाय तैंने
सुहृद बनाय कैसे धारे नाग कारे हैं ॥*

गुम्फित जूरा—ऐसा समझना चाहिये । वस्तुतः प्रकृति में इन पदार्थों का पारस्परिक विरोध है, परन्तु नायिका के शरीर में इनकी (इनके उपमेय की मित्रता) तथा पारस्परिक सहानुभूति देखी जाती है । अतएव वह (शरीर) तपोवन तुल्य हुआ ।

*केश वर्णन । यहाँ से पृथक् अंगों का (केश, मुख इत्यादि) वर्णन किया जाता है ।

(२४)

तेरो मुख चन्द सो चकोरन लगत
अरविन्द सो लगत है मलिन्दन* के गन को।
दरपन सम दरसात "राजहंस"
अवदात† यह मनहर पीतम के मन को॥
सुबरन गोलक सुवासित सखीन कहँ
जानि परै लाज को डबा सो गुरुजन को।
प्रखर प्रभाकर समान है लखात यह
ताप पहुँचावन में सौतिन के तन को॥

(२५)

राका घटै पै बढ़ै यह; सो निसि ही में रहै, यह आठहु याम है।‡
ताहि मलीन बनावनवारी, बनी मुख की यह कांति ललाम है॥
जौलैां रहै यह तौलैां रहै वह, जो यह ना तो हुवैां न अराम है।
राका बराकी बनै सम कैसे लसै यह तौ निसि में जनु घाम है॥

(२६)

मुख में अँखियाँ अँखियान ते नाक तहाँ पै बुलाक सुहाय रही।
जुग ओंठन के बिच हीरक से रद $ की अवली मन भाय रही॥
मनु मोतिन पूरित विद्रुम†† की डिबिया छबि है सरसाय रही।
तहँ सों मुकतान निकारि सुकी दोउ खंजन को तरसाय रही॥

---

* भ्रमर। † पवित्र। ‡ मुखद्युति वर्णन। $ दांत। †† मूँगा।

(२७)

*मंजुल आनन में कवि 'हंस' मनोहर नैनन पै अति नीको।
देखि परै जुग भौंहन के बिच लाग्यो सुकेसरि को बर टीको॥
मानहु नैनन के पलरे करि डाँड़ी सु भौंहन की अवली को।
टीके को मंझा† बनाय मनोभव देत कटाच्छन लेत है‡ ही को॥

(२८)

$कैधों तुव चाकर चतुर अनियारे पैठि
हृदय-पयोधि मन-मोती के कढ़ैया हैं।
"राजहंस" कैधों मनसिज के सुहृद बनि
ताकी द्युति तीछन कटाछन चलैया हैं॥
कैधों नरधीरता की थाह लै कहत कान
कैधों तुव चित चंचलाई दरसैया हैं।
कैधों ये तिहारे छवि वारे बर नैन बाल
रसिक-हृदय-लोह-चुम्बक बनैया हैं॥

(२९)

$कंज ††मद गंजन हैं अंजन सों रंजन हैं
खंजन उड़ाय धीर भंजन बने अथोर।
नयन कुरंगन के रंगन को भंग करि
अंगन अनंग को भवन करैं ये छिछोर॥

---

* तिलक वर्णन † तराजू की डंडी ‡ के बीच का डोरा। ‡ हृदय
†† कमल। $ नयन वर्णन।

(२९)

मीनन के मारक बिदारक बियोगिन के
पारक पलासन के चित्त के चतुर चोर।
"राजहंस" कैसे क्रूर कुटिल कटाक्ष वारे
'नाक' *ढिग बसे कलानिधि को करे जो फोर ॥

(३०)

प्रवाल प्रभाहर दाखन से अधरान पै हंस करैं जो निवास।
रदक्षत† ऐसे मनोहर देखि यही उपजै मन माँहिं बिलास॥
कि जो तिय लोन भरे तन के रस लेत समै उपजै हिय तास।
बनाय पियूष नदी तट चूहे‡ बुझावत जात पिया से पियास‡‡ ॥

(३१)

अध खुले पंकज-वराटक ॥ कहत कोऊ
कोऊ कहै ससि माँहिं संपा + आय टूटी है।×
कोऊ कहै विद्रुम सों मोती का प्रकास मंजु
कोऊ कहै पान पै कली की छबि जूटी है ॥
कोऊ कहै मृदु मुसकानि बनिता की यह
पीयुष की धार सी सुधाधर सों छूटी हैं।

---

* नासिका, स्वर्ग। † दन्त क्षत। ‡ नदी के तीर के कृत्रिम गढ़े जिनसे पीने को पानी लिया जाता है। ‡‡ वास्तव में दन्तक्षत का वर्णन शेष तीन खण्डों का है न कि इसका परन्तु नखशिख में प्रसंग वश यहाँ लिख दिया गया है। ॥ कमल फूल के पीले फल। + बिजली।
× मन्द हँसी वर्णन।

(३१)

"राजहंस" मेरे मन माँहिं यह आवै मानों
सोभा सिन्धु माँहिं सुषमा + की रासि फूटी है ।

(३२)

कैधों यह रूप के बटोहिन की बाट मंजु
रूप के खजाने उरजन* तक जात है ।
कैधों यह सीसा सो उदर-बर पार करि
बेनी की मनोहर सुछबि छहरात है ॥
कैधों यह मृगमद† की बनी लकीर बर
कैधों रूप‡ कूप जात सांपिनी लखात है ।
कैधों यह रोमराजि†† राजि रही "राजहंस"
कैधों मनसिज धनु-डोर सरसात है ॥

(३३)

शृङ्गार—

घेरदार घाँघरे पै चूनरी चुनी है चारु
उन्नत उरोजन पै कंचुकी कसी रहै ।
तुम्ब से नितंबन पै मंजु बैन दैन हारी,
"राजहंस" मैन ऐन मेखला‡‡ बसी रहै ॥
हीरन के हार सी सुहावनी दसन पांति,
ताके बीच बीच पीक लीक सरसी रहै ।

+ परम शोभा । * स्तन † कस्तूरी । ‡ पेट की रोम रेखा का वर्णन है । ††नाभि ‡‡ किंकिणी, करधनी ।

(१७)

पाँयन छराके छोर, हाँथन जड़ाऊ कड़े
हिये हार, बारन पै मालती लसी रहै ॥

(३४)

सुन्दर सिंगारन सों अंगन सजाय बाल
विविध दुकूल नित धारिबो करत है।
'राजहंस' अतर, फुलेल, तेल, फूलन सों
चहुँ ओर महक बगारिबो करत है ॥
अंजन सों नैन, मुख रंजन सो दन्तन की
चौगुनी चमक चारु पारिबो कहत है ।
मोहि निज बारन के भारन सँवारन में
आठों याम आरसी सँभारिबो करत है ॥

(३५)

झूला—

लम्बे लम्बे सघन कचन* बगराय बाल
पायँ उचकाय निज पैंगनि बढ़ावती।
चन्दहिं दिखाय मुख इत सरसाय सुख
भुजनि उठाय भुज मूलनि दिखावती ॥
उड़ति, परति है परी सी रसरीन थाँभि
लंक लचकाय झीनो† पट फहरावती।

---

*बाल फैलाकर। †पतला, झिल्ली।

'राजहंस' छन छन आय छबि दरसाय
झुकि झुकि झूलि जन मन है झुलावती ॥

अनुराग खण्ड

(३६)

नायक हृदय—

सुरूप नदी अवगाहन* हेतु
गयो मन 'हंस' जबै तेहि पास।
रह्यो थकि चक्रित त्यों चित भो
फँसि फाँसनि में उपजी हिय त्रास ॥
बिलोक्यो जबै घट† द्वै जल में,
तब तौ बचिबे की भई कछु आस।
गयो जब पास भ्रम्यो ह्रद‡ मों,
उबरै को कपूर$ भयो सो बिसास ॥

(३७)

चन्दन चन्द न सीत लखात
न कुन्दन कुन्द†† मनोहर भावैं।

---

* स्नान। † स्तन। ‡ भँवर, नाभि(घट के सहारे मनुष्य नदी पार कर जाता है परन्तु घटों के पास जाने की इच्छा करते ही मननाभि रूप ह्रद में भ्रम गया।) $ बचने का विश्वास उड़ गया। ††मोगरा फूल।

(१६)

बीनन हंसन कवैलिन के
बर बैन हियो न कबैां हरसावैं ॥
खंजन कंज कुरंगन के
दृग फेरि कबैां सुखना सरसावैं ॥
अंगन, बैनन, नैनन नेकु
लखे मन भूलि तहैं रहि जावैं ॥

(३८)

मेरे मन ! मानि मेरी बात बनिता की लट-
नागिनीन माँहिं निज अंगन फँसैयो जनि।
भूल सों फँसे जो जाय तैा तरे उतरि आय
ताके गोरे गातन में गातन गड़ैयो जनि ॥
उबरि उपायन सों लालची सुभायन सों
'राजहंस' उन्नत उरोजन पै ऐयो जनि।
उरजन आय भुज मूलन समाय तुम
बढ़त बढ़त ताके हाथ परि जैयो जनि ॥

(३६)

छाय गई ब्रजमण्डल में वह होरी मनोहरि गेहन गेहन।
औरै भये रँग "हंस" विहंगन बागन बीथिन गेहन देहन ॥ *
मोहन रंग चलायो इतै उत बाल उड़ायो गुलाल के मेहन।
भींजि गयो उत सुन्दरि रंगन, भींजि गये इत श्याम सनेहन ॥

---

* होली वर्णन।

(४०)

ह्वै गयी रुचिर सपने सी वह "राजहंस"
पथ के पथिक कहँ चित्र सम कै गयी।
मंजु छबि दरसाय रूप की सुधा पियाय
ताके उर बिरह की बिस बेलि बै गयी॥
ज्ञान, बुद्धि, धीरज, बिबेक, लाज, सील, सुख
सब ही सों ताको वह हियरो रितै गयी।
अनल की झर सी झरोखे सों झपकि झाँकि,
झझकि झटति झुकि झँपि मन लै गयी॥

(४१)

नायिका-हृदय—

* चरावत धेनु निकुंजन में जमुना तट अम्ब कदम्ब मँझार।
हिये बनमाल बिसाल सजे कल मोरपखान सँवारत बार॥
धरे मधुराधर पै वर बेनु अलापत मंजुल तान मलार।
गयो गाड़ औचक ही सजनी! दृग सों मन लैां वह नन्दकुमार॥

(४२)

†इतते घर को घनस्याम चले उतते कल बाम चली जल को।
इनको मुख चन्द उन्हैं दरस्यो उनको तन ओप इन्हैं झलको॥
ढिग बाल गयो मन बालम को ललना मन लालन पै ललको।
इनको घर देखि पर्यो तहँ 'हंस' उन्हैं जल हू तहँई छलको॥

---

* श्रीकृष्णावलोकन। †परस्परावलोकन।

(४३)

कटि तक उन्नत सुछज्जन झरोखे तीर
कर पै कपोल दये झुकि इत ठाढ़ी बाल ।
'राजहंस' ऐसेई झरोखे पर हाथ धरि
ताकि रहे उत सों गुवालिनीहिं नँदलाल ॥
तारन* के तार बिन तारन के दौरि रहे
दुहुँन के दोऊ ओर, ह्वै रह्यो यही हवाल ।
नैनन सों नैन मिलि मन बदलाय, अब
पियत दलाली महँ रूप की सुधा रसाल ॥

(४४)

अनुराग रँग्यो है जऊ मन में
तऊ बालम बाल उदासी रहैं ।†
जल जो पै भर्यो निसिद्यौस तऊ
अँखियाँ दुखिया सी पियासी रहैं ॥
जऊ बीते अनेकन बासर हैं
तऊ आसैं हिये कलिका सी रहैं ।

---

* आँखों की पुतलियाँ (तारे) बेतार का तार दे रही हैं ।

† विरोधालंकार' [अनुरक्त होकर उदासी (संन्यासी) रहना; इसी प्रकार और भी जानिए] यहाँ विवाह के प्रथम की वियोगावस्था वर्णित है ।

(२२)

बिधि की गति बाम लखौ तौ सखी !
        वे सदा चकई चकवा सी रहैं ॥

(४५)

दरसन होत ही नयन झँपि जात आपु
        चाहत कहत पै न कहत बनत बात ।
लाज कुल शील के सुफन्द में फँस्यो है हीय
        जागि जागि भाव मन ही में रहि रहि जात ॥
कवि "राजहंस" कैसे भेजिये सँदेस बेस
        हियरो जनाइबे को लागत न कोऊ घात ।
आँचहू न बाहर निसारी निसरत, पर
        प्रबल अनल ही सों भीतर जरत गात ॥

(४६)

मनोज बिथा* सों बिथा† मरिबे
        हित पायो सखी ! नर को तनु हाय ।
न क्यों तेहि कानन में जनमी
        जहँ जात गोपाल चरावन गाय ॥
जु होती तहाँ बनमालहु मैं
        तौ कबौं हरि लेत हिये सों लगाय ।
जु होती सिला तो बजावत बेनु
        कबौं न कबौं हरि बैठत आय ॥

---

* व्यथा । † वृथा ।

(४७)

विवाह-वार्ता—

पायो संजोग मनोहर कैसा सो
बातैं सबै सखि नीकी बनीं अति।
कै करुना कवि 'हंस' दुहूँ दिसि
ह्वै अनुकूल विरंचि रची मति ॥
आसैं पुजीं छन एकहिं में,
पल एकहि में बदली दुख की गति।
आस न जाका हुता हियरे,
दिन चारिहि में अब ह्वै है सोई पति ॥

(४८)

विवाह—

को है री इतेक भागवान और भू पै आजु
जैसे सखि साजन उमंग रस रत हैं।
कवि "राजहंस" हेरिये री मेरी बीर तिन्हैं
बाँकी छिटकाय छबि हियरो हरत हैं॥
लाजन गड़े से चारु चरनन दीन्हें दीठि
हिय में सनेह के उछाह उछरत हैं।
मेरु चहुँ ओर ससि सूरज समान आजु
ललना ललन बर भाँवरे भरत हैं॥

(४९)

स्वकीया—

जाय ससुरारि रारि तम की तमारि* बनि
"राजहंस" गुरुजन दासी सी बनी रहै।
जेतो सुबरन† सुबरन सो सलोनो वाको
तेतोई सुगुनवती सीलन सनी रहै॥
पीतम की प्रतिमा हिये के अरघा में निज
नेह सों जमाय दृढ़ मुदित घनी रहै।
सदन सँभारन प्रवीन, अन्नपूरना सी
भामिनी भवन-अधिरानी अवनी‡ रहै॥

(५०)

जेती चन्दमुखी की छिटकिबो करत छबि
तेरो उर पतिप्रेम जागिबो करत है।
जेती सुघराई को निवास तन माँहिं तेतो
गुन को समूह अनुरागिबो करत है॥
"राजहंस" धन्य यह जाकी तन छाँहि देखि
हिय सों कुमति सब भागिबो करत है।
चंचलाई तजि बाय$ भगति जनाय जाके
निसिदिन आय पायँ लागिबो करत है॥

---

* सूर्य। गृहकलहरूप अंधकार के लिए सूर्य के समान बनकर। † अच्छा वर्ण। ‡ पृथ्वी पर। $ वायु (जो सदा-गति है तथा सभी स्थानों में प्रवेश कर सकती है)

(५१)

पति-मुख की सुवास ही में मोद पावै नित
पति को परस पाय मन उमँगी रहै।
पति बैन सुधा सी द्रावैं जाके कानन में
पति अधरारस की कामना जगी रहै॥
"राजहंस" पतिहिं अकेले सरबस मानै
पति प्रतिमा ही जाके दृगनि रँगी रहै।
पति तन, पति मन, पति धन, पति प्रान,
पति पद ही की हिय लगनि लगी रहै॥

(५२)

इत दीपति दीपति है पति की उतहू तिय की छबि छाय रही।
हियरे महँ प्यो * इत बंद उतै ललना तन माँहिं समाय रहो॥
इनकी उनपै उनकी इनपै सम प्रीति प्रतीति सुहाय रही।
इत मोहन मोहत मोहिनि को उत मोहिनि है मन भाय रही॥

संयोग-वियोग खण्ड

(५३)

नवोढ़ा मुदिता—
†छुट्यो तन स्वेद, छके दृग 'हंस' प्रसूनन के बिथुरे सब ताग।
कटे मधुराधर दन्तन सों, उपटी नख रेख, छुट्यो अँगराग॥

※ प्रिय, पति †रतान्त चिन्ह पाकर भी जो समागम का यथार्थ रूप न समझ सके उसे मुदिता कहते हैं।

रही यह देखत मैं सब ही कि थकी मम देह, मिट्यो पदराग।
रही तव सीख सखी ! कहँ सो रहिगो कित सो बरन्यो अनुराग ॥

(५४)

नवोढ़ा—

भुज बल्लरि * जालन जो पै फँसी
तबहूँ वह बाहिरै जान चहै ।
पिय जो पै रह्यो समुझाय न 'हंस'
तऊ वह नेकहु ज्ञान गहै ॥
मुकरै † जितनो तितनी छबि दै
पिय की अभिलासन को उलहै ‡ ।
रस भौन में भावते$ पै नवला नहिं
पारद†† सी थिर नेकु रहै ॥

(५५)

ललकि ललकि लाल भेंटन चहत जब
लपि लपि बाल तब लंकहि मुरावैरी ।
मधुर सुधाधर की धार सों अधर बर
‡‡आबरनि सुबरन बरनि दुरावैरी ॥
गात जलजात सों सुछनि छनि "राजहंस"
सरस नवल छबि चित्तहिं चुरावैरी ।

---

*लता †पलटती है ‡बढ़ाती है । $पति ††पारा ‡‡कपड़े से

सिसकि सिसकि निज अंगन समेटि बाल
"सी' 'सी' करिबे में सुधा-सी सी सी दुरावैरी' ॥

(५६)

बदन सुधाधर जुन्हाई छिटकाय चारु
चाँदिन के पान से प्रयंक पै मढ़त जात* ।
देखि देखि घन उरजन की उठनि बर
बार बार बालम की कामना बढ़त जात ॥
कटि गहि "राजहंस" पिय भुज भरै तब
घन सों तड़ित† सम बाहिरै कढ़त जात ।
अंगना‡ मरोरि अङ्ग "नाहीं" "नाहीं" करै जेतो
तेतोई अनंग ††रंग पिय के चढ़त जात ॥

(५७)

मानिनी—

बैठी परयंक पर गरब गरूर भरी
लाग्यो है मनावन में पति पायँ परि परि ।
"राजहंस" मानि रही नेकहू न बाल यह
पायँ निज ऐंचि रही दृग लाल करि करि ॥
सखिन के सामने कह्यो जु पिय 'प्यारी' आय
ताको दाव लेति अब रोस हिय भरि भरि ।

---

*पलंग पर चंद्रवदन का प्रकाश फैला कर मानों चाँदी के पत्ते मढ़ती जाती है । † बिजली । ‡ स्त्री । ††काम का रंग ।

जेतो जेतो मधुर बचन है कहत पति
तेती तेती ऐंठत गुमान ही में अरि अरि ॥

(५८)

स्वाधीनपतिका—

मान करौं, नहिं हामी भरौं,
न सिंगारन सों निज अंग सजावहुँ ।
डीठि करौं समुहे न कबौं
न कबौं मधुरे निज बोल सुनावहुँ ॥
खात है लात न जात कहूँ
मँड़रात है पास मैं काह बतावहुँ ।
एते उपाय करौं तबहूँ नित
सौतिन सों दस गारियै पावहुँ ॥

(५९)

*मध्या—

वह सोवत सो बनि कै परयंक में
मौन बन्यो कबको री डस्यो ।
जऊ बैठि गई तहँ जाय भटू !†
तऊ मोंहिं अचेतहिं जानि पस्यो ॥

---

* सखी † नवोढ़ा उस नई ब्याही हुई स्त्री को कहते हैं जिसमें रति की इच्छा बहुत ही कम तथा लज्जा अधिक होती है । जिस स्त्री में रति और लाज प्रायः बराबर हो उसे मध्या कहते हैं और जिसमें रति अधिक और लज्जा कम हो उसे प्रौढ़ा कहते हैं ।

(२६)

छबि सों छकि मैं झुकि कै अधरारस
चाखन को ज्यों बिचार कर्यो।
तबलैां हंसि मों तन देखि* छली†
मोंहिं खैंचि सुअंक‡ भर्यो ई भर्यो॥

(६०)

लैकै कर माँहिं तसवीर निज बालम की
ललना पियति हुती रूप की सुधा रसाल।
मन में मगन होति पुलकति "राजहंस"
नेह की छलाकनि में ह्वै रह्यो यही हवाल॥
एते ही में दबके$ पदनि पिय आयो तहँ
देखि यह पास जाय चूमि लयो मृदु गाल।
चैांकि परी, झुकि परी, झंपि गई बाल†† वह
तन जल कन मद्य, मुख बनि आयो लाल॥

(६१)

उत्कंठिता

हुती अति पीन पयोधर भार
झुकी कटि यद्यपि कोमल खीन।
सजाय चुकी सुप्रसूनन को
पुट दै तबहूँ परयंक प्रवीन॥
बढ़ाय प्रकास उड़ाय सुवास
बिकास दये निज नैन कलीन।

---

* देख कर †पति ‡ गोद में $ दबे पैरों से †† बाला, स्त्री।

गड़ावत डीठि कपाटन पै यह
कामिनि बैठि बजावत बीन ॥

(६२)

वासकसज्जा—

मधुरी महक गमकैं तन सों चिकने निज बार सुधारति है।
पहिरै पट पारसी आरसी लै उर कंचुक मंजुल धारति है॥
मलि आनन पै अँगराग अनूप सुरूप सुचारु सँवारति है।
मुख-रंजन सों मुख मंजु सजाय नवेली सरीर निहारति है॥

(६३)

कलहान्तरिता—

आयो हुतो पिय 'हंस' विदेश सों
पौढ़्यो निशीथ प्रयंक मों जायकै।
मोंहिं रिझावन लाग्यो अनेकन
भाव बताय औ बातैं बनायकै।
हौं हूँ "उहूँ" "उहूँ" कै जबलैां निज
मान जनायो सु अंग दुरायकै।
तौ लौं कहा कहों मेरी सखी! कढ़ि
आई उषा तम तोम हटाय कै॥

(६४)

अवस्यत्पतिका—

काहे बर आभरन बसन बिसारे सबै,
काहे सोच बाढ़्यो, काहे छूटि गयो खान पान।

काहे रस आल हू न सखियाँ सोहात ताहि,
काहे आजु भूल्यों गुरुजन हू को सनमान ॥
काहे घनसार *हार लागत अँगार सम,
काहे छन छन तन हू को बिसरत ध्यान।
कवि "राजहंस" हाय हाय हम जानी, तिय
पिय के मुखन सुनि पायो परदेस जान ॥

(६५)

वियोगिनी वर्षा—
घहराय घिरी घन घोर घटा
जब जामिनि में छिति मण्डल ह्वै । †
करके सुधि पीतम की अँगना ‡
अँगना$ में गिरी अति व्याकुल ह्वै ॥
नभ के जल के परसे चख†† सों
येहि भांति बड़े अँसुआ चले च्वै ।
मनु स्वाती के बुन्दन ह्वै निकरे
कल सीपिन सों मुकताहल‡‡ ह्वै ॥

(६६)

नैनन सों नीर की नदी सी निकरन लागै
जब घन घोर घटा बरसि बरसि जात।

---

* कपूर †यहाँ से १४ छन्दों में विविध ऋतुओं तथा विरह निवेदन इत्यादि के साथ वियोग की अवस्थाओं का वर्णन किया जाता है। ‡स्त्री $आँगन। ††चक्षु; आँख। ‡‡मोती।

"राजहंस" कमल सों कोमल कलित गात
नित्यहि जवासो* ऐसो झरसि झरसि जात ॥
उठति हिये में बड़ी हूक अबला के जबै
त्रिविध समीर तन परसि परसि जात।
पाय बरसाइति की बाल बरसाइति†
तिहारे बिन रैनिन में तरसि तरसि जात।

(६७)

गरजैं बदरा बदराइ घने उत डारैं पलासन की लरजैं‡
लरजैं लखि कै हिय कामिनि के उत चातक ऊपर सों तरजैं ॥
तरजैं तन आय कै बुन्द जबै तब होत करेजनि में दरजैं††।
दरजैं न परी यह देखत हू ये अजौं अति बेगन सों गरजैं ॥

(६८)

हेमना—
नवल वयस वारी ससि वदनीहिं भौन—
माँहिं तजि जब ते गयो है परदेस पति।
तबते छरि सी वह दिन दिन सूखि सूखि
पातरी परत जात बिसराय धृति मति ॥
ठण्ढ ऐसी कठिन है जामें जमि जात जल,
जूड़ी सी चढ़त, देह पटन‡‡दुरी रहति।

---

* जवासा एक वृक्ष विशेष है जो बरसात का पानी पड़ते ही जल जाता हैं। † वर्षा का शुभ मुहूर्त। ‡ हिलती हैं। ††दराज, दरारें। ‡‡कपड़ों में छिपी रहती है।

पते हू पै अधराति माहिं ह्वै उघारि यह
बिजन* डुलाय परयंक परी तरफति ॥

(६९)

बसन्त—

ठंढ की तीखी कटाखैं कटीं
अब तौ कुसुमाकर † के दिन लागि हैं।
पातन के अब नूतन पुंज
अँगारन ‡ से तरु डारन दागि हैं ॥
मौन बनी अबलौं तौ सह्यो
तन में तब प्रान कबै अनुरागि हैं।
पाय बसन्त जबै मदमत्त
'कुहू' 'कुहू' कवैलिया कूकन लागि हैं ॥

(७०)

छूटि गये "राजहंस" असन बसन सब
पीरे रंग केरो परिधान $ पहिरायगो।
नेह†† हीन रूखे केस करिगो जटान सम
अरुनारी अँखियान नसा सी चढ़ायगो ॥

---

* पंखा । † बसंत । ‡ नये नये लाल पत्ते अगार के समा[न] वृक्षों की डालियों को दागना प्रारंभ करेंगे । $ वस्त्र
†† स्नेह, तेल ।

धरनि की धूरि कै गयो भभूति ताके हित
एक निज नाम ही की रटनि रटायगौ।
सरस बसन्त माँहिं जाय परदेस पिय
बनिता बियोगिनीहिं जोगिनी बनायगौ ॥

(७१)

अलाप—
"राजहंस" ऐसेई बिरह तन तावै तापै
काहे तैं ससी पै ताकी आयसु गहावैरे।
सुधि सो संजोग की हिये के खण्ड कीन्ह्यों तापै
त्रिविध *समीर सांग काहे तैं चलावैरे ॥
बीर बनि अबला दुखीन को दहन करि
लोक परलोक भीति मन में न लावैरे।
ऐ रे मनसिज ! † मन ही को काटि काटि काहे
ककरे ‡ समान कटु कुजस कमावैरे ॥

(७२)

छन तौ छपद ! $ सुनि जाहु मेरो दुख बैठि
तुम तौ परम प्रीति रीति के जनैया हौ ।

---

* त्रिविध—शीतल, मंद, सुगन्ध। † मन में पैदा होनेवाला, कामदेव। ‡ केंकड़े के बच्चे माँ का पेट फाड़ कर ही पैदा होते हैं । $ षट्पद, भ्रमर।

(३५)

काटत * कठोर काठ ऐसे परतच्छ पै
सनेही नलिनी के अलि ! बन्दी बनि जैया है ॥
घायल बिरह सों, लगाये हरदी† को रंग,
एते सुमनन हू में चैन के न पैया है ।
नेकु तौ बिलमि जाहु, भाजि कित चले, हाय !
तुमहूँ तो साँवरे, कन्हैया ही के भैया ‡ है ॥

(७३)

बिसम बिसैली चंद चाँदनी जगावै गात
कुसुम समूह अंग अंग छेदि डारे हैं ।
चन्दन लगाये ते भये जो तन माँहि घाव
देखहु न आज लौं ये मिटत हमारे हैं ॥
कहियो पवन ! घनस्याम सों सँदेसो जाय
जीव निज सबै काहू भाँति उर धारे हैं ।
देखि दसा दुसह हमारी बहुबार गये
आँसन बहाय, घन घोर घन कारे हैं ॥

---

* "कोलत काठ कठोर क्यों, रहत कमल में बन्द ।
आई मों मन-मधुप की, इतनी बात पसंद ॥ (रतन हजारा) ।

†भ्रमरों की पीठ पर कभी कभी पीले धब्बे पड़ जाया करते हैं । विरह से घायल होकर ही मानो वह हल्दी लगाई गई है । ‡ श्यामता के नाते ।

(७४)

* जग सों बिराग भयो, घर बनि बैठ्यो बन
 तन बलहीन एक आसन पर्यो करै।
ऊरध उसासन सों साँस रुकि रुकि जाति,
 प्रान तन मन वृत्ति नेकु ना धर्यो करै॥
रहै उर अन्तर निरन्तर पिया को ध्यान
 तनमय होतहि समाधि सी लग्यो करै।
"राजहंस" ऊधो ! तुम जोग का सिखाओ ह्याँ
 बियोगिनी के जोग तौ हमेस ही जग्यो करै॥

(७५)

बिरह-निवेदन—
प्रात उठि साजत सिङ्गार सों सरीर मंजु
 बसन मनोहर फुलेलन सितै सितै।
अति अकुलाति मुरझाति साँझ होत देखि
 पीरी परि जाति सो विभूषन रितै रितै॥
रहि रहि जाति मनमारि मैनमारी प्यारी
 रति सुखकारी चारु चाँदनी चितै चितै।

---

* यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, और समाधि, इस प्रकार योग के ८ अंग होते हैं। वियोगावस्था में इन सब का अनुभव हो जाया करता है।

(३७)

आवनी सुनत स्याम ! रावरी महोनन सों
बावरी बनी है बीर * वासर बितै बितै ॥

(७६)

लाल ! तिहारे बियोग बिथा सों
उतारति है पिंजरा वह लाल † को ।
ताहि हिये सों लगाय कहै
"तुम तौ पहिचानत नीके गुपाल को ॥
देखि चुके हो सबै तौ दसा,
दरसैयो तहाँ अब मेरे हवाल को" ।
यों कहि पंछी उड़ावै अनेकन
देखहु स्याम ! कहा भयो बाल को ॥

(७७)

जब ते बियोग भयो बाल को तिहारो लाल !
तबते नयन ताके नेकु चैन पावैं ना ।
रहत बिहाल लाल लाल से अधीर अति
कानन लौं आवैं जायँ अंगन थिरावैं ना ॥
जदपि अकेलो एक सूधो सो कुरंग ‡ बैठ्यो
तदपि दुजेस ◊ बढ़ि घटि कल पावैं ना ।

---

*सखी । † लाल पक्षी । ‡ हरिण—कहा जाता है कि चन्द्रमा में हरिण ही धब्बे का रूप रख कर बैठा है । सो यहाँ स्त्री के मुखचन्द्र पर तो दो हरिण (नेत्र) तड़प रहे हैं । ◊ चन्द्र ।

ताके मुख पै तौ तरफत हैं कुरंग जुग
देखौ चलि कहूँ छाती छेद करि जावैं ना ॥

(७८)

विरही पति—

कीन्हों धन संग्रह विपुल परदेस में, पै
काहु भाँति सुधि न भुलाई भूली घर की।
तरुनी तिया की वह रुचिर मुगुध छबि
जागि जागि दिन राति हिये माँहिं खरकी ॥
कवि "राजहंस" मन माँहिं जो उचाट भयो
पाती के लिखत छाती आनन्द सों धरकी।
उत परदेस सों पयान कीन्हो ज्योंही पति
इत पतिनी की बर बाईं आँखि फरकी ॥

(७६)

आगत-पतिका—

बैठ्यो अँगना में पिय आय परदेसन सों
"राजहंस" दोऊ हिय हिरकि हिरकि जात।
इत नैन पीतम के ऊपर भ्रमत उठि
उत पट खुलि खुलि भिरकि भिरकि जात ॥
पिय के बिलोकिबे को खिरकीन खिरकं न *
फिरकी सरिस तिय थिरकि थिरकि जात।

---

* खिरकी खिरकीन फिरै फिरकी सी—देव।

इत उत चोरा चोरी झाँकन में ताके हिय-
हारन के मोती मंजु छिरकि छिरकि जात ॥

(८०)

पहुँचो पिय 'हंस' बिदेसन सों
अधरातिहि में अपने घर को।
नवला अबला जेहि में थी परी
तेहि सेजरि पै सुखसों सर को॥
इत देखत थी सपने कि पिया
भुज माँहिं भरै न सुनै हर को।
उचकी यह देखत ही बनिता,
छतियाँ ह्वै गईं, पिय ही फरको॥

(८१)

प्रौढ़ा—

पीकर * पकरि परयंक † पै परी प्रवीन
दै कै गल बाँहिं रस रंग लूटि कै रही।
दै अधर बिम्बन को चुम्बन मधुर
"राजहंस" ताके अधर को स्वाद यह लै रही॥
रति विपरीत में बिनोद बहु देन हारी
मृदु मुसकाय दृग दृगनि लगै रहो।
छतियान छाती सों छुवाय छबिवारी वह
पिय के हिये की सब कामना पुरै रही॥

---

* प्रिय का कर (हाथ) † पलँग।

(८२)

गर्भिणी—

आजु परभात छबि औरई लखानी तन
और रंग तरुनी तिया को मन छ्वै गयो।
"राजहंस" सफल हिये की चारु आसा भई
ललित मनोरथ को बीज बन ब्वै गयो॥
तपनि मिटावन हृदय सरसावन
अमल जीव धाम सो अनन्द घन च्वै गयो।
आज ही अनूप तेज राखि उर अन्तर
समी के सम साँचोई तिया को तन ह्वै गयो॥

(८३)

सुरत सुखद सम अति अरसाने अंग
आनन अनूप सोन जूही छबि छावै है।
अमल रसाल सम युगल उरोज पर
अधिक अधिक स्यामताई सरसावै है॥
नित "राजहंस" निज रूपहिं बढ़ाय लंक *
तन मन बैन की चपलता हटावै है।
रबि छबिवारी वर ऊषा सी रुचिर
बाल-गरभ समेत प्यारी काको न सुहावै है॥

---

* कमर

(८४)

पुत्रवती—

उदित उदयगिरि अवलीन जैसे रबि
जैसे राजै सरस कुसुमपुंज कोद में ।
कवि "राजहंस" जैसे सर में सरोज वर
जैसे मनहर सुर सुन्दर सरोद में ॥
राजत भरत ज्यों शकुन्तला के अंक
रघुराजै ज्यों सुदच्छिना की भाग भरी गोद में ।
पिय-नेह-राती तिय-गोद में बिराजि शिशु
पागत है ताको मन लाज औ प्रमोद में ॥

परिशिष्ट खण्ड

बिलासी पुरुष—

फीको लागो जँचन प्रवीन पतिनी को नेह
बरबस हियरो उमंग न गहत है।
रूप नगरी की गैल गैल अटिबे की रट
"राजहंस" ताके उर अन्तर रहत है ॥
भवन अहाते के सुबाहर निसरि
काहू चीकने चरम ही में प्रमुद लहत है ।
कब लौं पुरातन प्रसून पै रहेगी रति
नूतन मरंद* मन-मधुप† चहत है ॥

---

* मकरन्द, पुष्परस । † भौंरा ।

(८६)

खण्डिता*—

जऊ जानती बातें सबै यह बाल,
न रोस तऊ प्रगटावती है।
निज प्रीतम सों अँखियान हटाय
सदा हँसि बातें बनावती है॥
सरसीरुह† सूंघन के मिस, तीखी
उसासें हिये की दुरावती है।
अबला मुँह धोवन में अपने
अँसुवा जल माँहिं मिलावती है‡॥

(८७)

क्यों न रहौ दिन हूँ में तहाँ सजि
साज्जि जहाँ निज रैनि बितावत।
काजर सों रँगि कै अपनो मुँह
क्यों अब ताहि दिखावन आवत?॥
लाज न लागति है अजहूँ
अपराध किये पर बातैं बनावत।

---

* जिस स्त्री का पति किसी अन्य स्त्री पर आसक्त हो उसे खण्डिता कहते हैं। † कमल। ‡ प्रातर्जलेन वदनं परिमार्जयन्ती, बाला विलोचन-जलानि तिरोदधाति''—रसमंजरी। नायिका के कज्जल की रेख नायक के मुँह पर लगी देख स्त्री ने जान लिया।

नागिन * अंक लगायो कहूँ
यह नागिनी-अंक लग्यो है बतावत ॥

(८८)

"नयन तिहारे लाल लाल भये कैसे बाल" ?
"लाली तुव नैनन की दौरि इत आई है" ।
बातैं ये विचित्र कैसी" "चित्र चित्रकारी चारु
रावरे सुअंगन की आय इत छाई है" ॥
"तागहीन हार काहे दरसन लागे ?" "तुव
तागहीन ‡ हारन की कसक समाई है" ।
"पन्नगी न बनु मान त्यागु प्यारी !" "पन्नगी सी
उपटी हिये की मांहिं डसत सवाई है" ॥

(८६)

उपेक्षिता●—

छिटकि रही है चारु चाँदनी बिमल आली
ऐसे समै कछु तौ सरस गीत गायो करु ।
इत उत भ्रमत रहत दिन रैन पिय
आय इत रीते भौन हिये बिलमायो करु ॥

---

* किसी स्त्री (सौत) के तुमने हृदय से लगाया है, यह बात तुम्हारे शरीर में पड़ा हुआ (उपटा हुआ) वेणी का चिन्ह (नागिन अंक) स्पष्ट ही कह रहा है । † अश्रुबिन्दु । ‡ नायिका के हारों के दाग । ● जो स्त्री अपने पति के प्यार से वंचित होगई हो उसे उपेक्षिता कहते हैं ।

को हैं री बनाये बेस आवत इतै जो नित
हाल तो परोसिन के मोकहँ सुनायो करु।
कवि "राजहंस" जिय हमरो जुड़ायो करु
रुचिर नरन की सुचरचा चलायो करु॥

(६०)

कुपरामर्श—

जेतो रूप को गुमान करि रही बढ़ि बढ़ि
तेती तुव अभिमान रासि लुटि जावैगी।
यह सतरानि बतरानि मुसकानि तुव
औचक ही एक छन माँहिं छुटि जावैगी॥
नेह रस बोरि तू तौ बौरी बनि गोरी !
निसिद्यौस मनमोहन के संग संग धावैगी।
नेकु नन्दलाल के निहारे मन हारि तू तौ
ताहि बिन देखे चैन नेकहू न पावैगी॥

(६१)

मर्मव्यथा—

"राजहंस" बारन सँवारन के मिसु आली !
ताहि देखि नैनन सों सैन करिबो करौं।
सलिल भरै की बेर पट कटि सों लपेटि
गागरि के संग अँग ऊँचे धरिबो करौं॥
पाय के अकेलो ताहि पथ में सबेरी बेर
ताकी गैल रोंकि अरसाय अरिबो करौं।

एते हू पै समुझै न मंदमति वारो सखी !
हौं तो मैन * मारी मन माँहिं मरिबो करौं ॥

(६२)

दूती†—

सुमन सिंगार करि नाचत निकुंज जहँ
गुंजरत मंजु चंचरीकगन ‡ आय आय ।
बात $ की झकोरैं अनुराग सों उमँगि जहँ
कुसुम पराग सुचि लेतीं हिय लाय लाय ॥
"यौवन बहार न बहोरि बहुरैगी" जहँ
कहि समुझावैं कोकिला के वृन्द गाय गाय ।
मान तजि नेकु तौ विलोकु बन ओकु ॥ आली !
भैंटैं जहँ वल्लरी तमाल तरु धाय धाय ॥

(६३)

ललित लतान को बनाय कै निंकुज मंजु
सुरति तिहारी स्याम करत तिहारे हैं ।
जानि अधराति अभिसार+ करिबे के हेतु
तैने अंग अंग आभरन सों सिंगारे हैं ॥
देखि कै अकास अब कैसे पै उदास ह्वै कै
"राजहंस" सकल सिंगार मेटि डारे हैं।

---

* मदन । † यहाँ से विविध दूतियों का वर्णन प्रारम्भ होता है।
‡ भ्रमर । $ हवा । ॥ घर । + प्रिय के पास गमन ।

देखु चन्दमुखी ! घनस्याम सुख हेतु लेत
चन्दहिं छिपाये घन घोर घन कारे हैं॥

(९४)

बन्द करु भूषन सजाइबो छबीली बाल !
कल न परत उत नन्द के नँदन को ।
तू ही ले बिचारि कहूँ आभरन चाहे जात
"राजहंस" मंजु तन सुषमा सदन को॥
तोहिं जो सुभाविक मधुरई दई है दई*
काहेब उतारू भई ताहि मरदन को ।
तेरो तन भूषन की सोभा है बढ़ावत न
भूषन बढ़ावत सुरूप तुव तन को ॥

(९५)

कहति हुती मैं कि "सजाय राखु गात बीर !"
मेरी सो गभीर बात सुनन लगी तैं कब ।
आइगो मनाये पर मोहन भवन जब
उलझन लागी जाय भूषन बसन तब ॥
सारी सुखकारी जरतारी की किनारी वारी
कारी तैं निकारी प्यारी काम नहिं रह्यो जब ॥
मुकुरि† गयो है मन-मुकुर‡ तिहारो बाल
मुकुर मुकुर काहे मुकुर॰ निहारै अब ॥

---

* विधाता ने । † लौट गया । ‡ प्रिय ॰ दर्पण, आरसी

(६६)

अभिसारिका*—

नवल † सरीर माँहिं धवल ‡ वसन डारि
पिय के समीप है नवेली संचरत जात ॥
चन्द्रिकान • चरचित चाँदिन सी भीतिन पै
सेतता की मंजु दुति दूनियै भरत जात ॥
सिंधुर ‖ गवनि मन हरनि मयंक + मुखी
चरननि धीर धरि धरनि धरत जात ॥
नलिन बरनि बर गलिन अलिन सन
मलिन मलिन सम चलत करत जात ¶ ॥

(६७)

घहरैं घनस्याम निसा घनस्याम
खड़े तरु स्याम तमालन के ।
पहिरे पट स्याम सुस्यामलता
बनि बाल चली ढिग लालन के ॥
मिलि एक भई नहिं जानि परी
जुगुनू सम भे मनि मालन के ।

---

*जो प्रिय के पास संकेत स्थलों में गमन करती है उसे अभिसारिका कहते हैं। अँधेरी रात को गमन करे सो कृष्णाभिसारिका, उजेली रात को जाय सो शुक्लाभिसारिका। †नये, नूतन। ‡ श्वेत। • चांदनी से (ढँकी हुई)। ‖ हाथी। + चंद्रमा के समान मुखवाली। ¶ पद्मिनी को सुगन्धि के कारण भौंरे उस के पीछे दौड़ते हैं।

मुँह दीपति पै न दुराई दुरी
जऊ जूथ जुरें अलि आलन के।

(६८)

रह्यो रजनी तम तोम अपार,
न काँकर पाँयन मैं गड़ि जायँ॥
चली मन में यह बात बिचारि
मयंकमुखी * निज पेखत पाँय॥
तहाँ मुख की छवि दीपत देखि
ससी भ्रम सों अंखियाँ उठि जाँय।
इहै धुनि में परि बारहिं बार
झुकैं, उझकैं, झँपि कै रहि जायँ॥

†खण्डिता—

(६६)

घन घोर घटा घन कज्जल रंग,
घिरीं घहरीं फिरि सों घहरैं।
दमकैं चमकैं चल दामिनियाँ सो
छकीं छहरीं फिरि सों छहरैं।
जल सों कटि कै जो बनी नरियां
सो हुतीं हहरीं फिरि सों हहरैं॥
इतनेहु में स्याम की आसैं निगोड़ी
ठगीं ठहरीं फिरि सों ठहरैं॥

---

*चन्द्र के समान दीप्त मुखवाली। † कमर। ‡ संकेत स्थलपर जाकर और राह देखकर भी प्रेमिक को न पानेवाली।

(१००)

गई निसि बीत, मिल्यो नहिं मीत,
गई मन की मन में रहि बात।
रह्यो मन मान जनावन को
बिपरीत भई वह पूरन घात ॥
छुट्यो अँगराग मिट्यो रसरंग
निरास भयो अँसुवामय गात ।
भयो तन भार पहार अपार
सकात दिखाय पर्‌यो जलजात * ॥

(१०१)

मंजुल वंजुल † के कल कुंज
बनाय रही मग जोवत जाकी।
मारग में भरमें वे सखी !
फँसि फाँसनि में अपरै बनिता की ॥
आवन में जब बेर भई
बिगरी गुरु सोचन आकृति ताकी।
लाल भई इत प्राची ‡ दिसा
उत लाल भई अँखियाँ अबला की ॥

(१०२)

हियरो इमि तोरत जोरि सनेह,
छली नर है कि बन्यो पसु है।

---

* कमल (मुख)। † बेंत। ‡ पूर्व।

बदनाम भई जिहि कारन 'हंस'
सु देत न रंचहु सो रसु है ॥
कुलकानि गई, बर धर्म धंस्यो,
सत कर्म नस्यो अथयो जसु है।
अब ह्वै है कहा परिणाम हहा
हिय पै हमरो न चलै बसु है ॥

(१०३)

चेष्टासंगोपना—

लखि मोहन की मँड़रात पतंग
छुट्यो तन स्वेद सुरोम तने।
लखि कै यह पूंछि उठी सजनी
'नभ मो लखि का यह रंग ठने'? ॥
सुनतै वह बोली किसोरी सुबात
दुराइ सबै मनकी अपने।
* "सखि ! द्यौसहि में मोहिं देखि परे
नभ माँहिं नछत्रन वृन्द घने" ॥

(१०४)

प्रबोधन—

तेरो उतसाह मैं न मारन चहति तौंहू
देखु तौ घनेरे नभ घन घहराये रहैं।

---

* दिन में नक्षत्र देखना अशुभ है उसके भय से भी 'सात्विक' के समान स्वेद निकल सकता है और रोम तन सकते हैं।

उठिबो करत रैन दिन तहँ मोर सोर
सुक पिक चातक चकोर मुँह बाये रहैं ॥
पथ है विषम, गाँव बाहर, सरित दूरि
मग माँहिं कटकन कुञ्ज लटकाए रहैं।
लैकै घट चली है अकेली, मैं न रोकौं, तौंहू
मन में बिचारि ले चवाई इत छाये रहैं ॥

(१०५)

वचनविदग्धा—

रस चूषन में परवीन बने मधुलंपट नाम धराय रहे।
निज तान सुनाय सुनाय हमैं तुम दूरहि सों तरसाय रहे ॥
बन में यह बेलि फली इकली घन ह्वै फल हैं छवि छाय रहे।
*तेहि त्यागन कै मतिमंद मलिन्द! कहाँ उत हौ अब जाय रहे! ॥

(१०६)

लक्षिता—

तन की गति और की औरै भई,
जल सीकर आनन पै उनयो।
सुर कम्पित सो मुँह सों निकरै
मधुराधर पै यह काह भयो ॥

---

* वचनविदग्धा परकीया अपने प्रिय पुरुष को मिलिन्द (भ्रमर) के बहाने संबोधन कर रही है। । जिसके रतान्त चिह्न देख लोग असल बात जान जायँ, उसे लक्षिता कहते हैं।

पट, कञ्चुक देखत जानि परै
　　　　भकझोरिन को कहुँ रंग छयो।
जल लेन गयी जँह, कौन तहाँ
　　　　सखि! यों तुव रूप बनाइ गयो॥

(१०७)

सुरत-संगोपना※—

चूल्हे चली जाय ऐसी साँकरी अँधेरी गैल
　　　　धारे निज तीरन करीरन के रूख बीर।
लाख हू बचायो पै न पाँव बचि पायो
　　　　"राजहंस" इन कंटकन मोकहँ कियो अधीर॥
चलिबो हराम भयो पाँव काम को न रह्यो
　　　　व्यथित बिहाल गिर्‍यो स्वेद† सों सन्यो सरीर।
रहती परी मैं अधमरी सी, पकरि पायँ
　　　　काँटे काढ़ि जो न ये घटाय देत मेरी पीर॥

(१०८)

अनुशयाना‡—

खँडहर ढावन की चरचा सुनानो जबै
　　　　"राजहंस" तबते बिलाय गयो मृदु हास।

※ जो असलियत छिपाना चाहती है उसे सुरत-संगोपना कहते हैं। यहाँ पर नायिका अपने स्वेद, कंटकित शरीर और नायक की वैसी उपस्थिति का मनगढंत कारण दे रही है। † पसीना। ‡ अपने संकेतस्थल को नष्ट होते देख दुःखित होने वाली स्त्री।

इत उत फिरत भ्रमी सी सो भवन माँहिँ
देखति अटा सो धाय ताकी ओर ह्वै निरास ॥
देस काल सकलहि भूलि भूलि बौरी बनि
कहति फिरति जऊ जन है न कोऊ पास।
घर ना बनावैं ना ढहावैं खँडहर जूने
जाय किन कहै कोऊ प्रेत उत करैं वास ॥

(१०६)

कुलटा—

इक सों हँसि हेरि करैं बतियाँ
इक सों निज नेह जुगावति है।
इक पै भुजमूल दिखाय तिया
इक पै करिहाँ * लचकावत है ॥
दृढ़ चित्तहु तीछे कटाछन छेदि
मनोज को पंथ बनावति है।
इक को मन लै इक को धन लै
इक को तन लै बिनसावति है ॥

जगद्व्यवहार— (११०)

उत परकीय पौर पीतम कियो सनाथ
इत तिय भौन रस रंग सों सँवरिगो।
अरसात गात परभात पति आयो लखि
तरुनि के तन में कपट-मान अरिगो ॥

---

* कमर।

यह अवलोकि पिय हिय की दुराय बात
"राजहंस" जैसेई मनावन में परिगो।
त्योंही मुसकाइबो तिया को मन पार करि
आय नैन बैन अधरान में उतरिगो॥

(१११)

गणिका—

नित साँझ समै निज देह सँवारि
अटा सों छटा छिटकायो करै।
करि सैन दिखाय अनूपम रूप
धनी जन चित्त लुभायो करै॥
अति आदर की बतियाँ करि 'हंस'
अधीनपनो दिखरायो करै।
धन गाँठि सों खैंच मदान्धन को
यह बाल अँगूठो बतायो करै॥

(११२)

कल गान सुनाय सुनाय प्रवीन सुनैयन मौन बनाय रही।
रस भाव बनावन में कर की अँगुरी पर चित्त नचाय रही॥
अनुराग तरंगनि में सब के शुचि ज्ञान विवेक डुबाय रही।
अँखियाँ अरुझे पग हू गजगामिनि चंचल चाल चलाय रही॥*

---

* उसके पैरों में यद्यपि लोगों की आँखें लगी हैं तथापि वह वेश्या उनको चंचल चाल से चला रही है। (आँखों का बोझ उसे कुछ भी ज्ञात नहीं होता)

(११३)

सुरमा * सुरमाये कटाक्षन सों
    सुरमा † न कबों रहि सूधे सकैं ।
कुच कोरन छोरन घायल ह्वै
    अँखियाँ खरकैं फरकैं भरकैं ।
जिन औचक देखि लियो कबहूँ
    तिनके मन औचक ही उचकैं ।
लचकै जब लंक निसंकिनि की
    तब लाखन के हियरे लचकैं ॥

(११४)

विषयानन्द—

बरन्यो बनै न बर बनिता रसाल सँग
    सुषमा सने से जाके सोहत सकल अंग ।
छकि छकि पान करु मधुर मरंद ताके,
    ऐरे मन-मधुकर करि ज्ञान ध्यान भंग ॥
सेज ही सों काम, कर कण्ठ कल बाम,
    मुख मदिरा ललाम आठों याम यहै राखु ढंग ।
गंग में कहा है, जोग जंग में कहा है,
    साधु संग में कहा है, रचु रुचिर अनंग रंग ॥

---

* सुरमा से रंजित । † सूरमा, बीर ।

शुद्धिपत्र

अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप	पृष्ठ	पंक्ति
चन्द्धर	.. चक्रधर	.. समर्पण	.. २
शृङ्गारिक	... शारीरिक	...भूमिका	१७
ऐते	... एते	... ११	... १
लट्ठ	... लट	... ११	... १६
सा	... सों	... १२	... १
करे जो	... करेजो	... १५	... ४
दसत	... दसन	... १७	... ८
कहत	... करत	... १८	... १४
झटति	... झटिति	... २०	... ८
एकहिं	... एकहि	... २३	... ५
आस न	... आसन	... २३	... ७
हेरिये री	... हेरि येरी	... २३	... ११
मद्य	... मय	... २६	... १२
भूल्यों	... भूल्यो	... ३१	... २
वियोगिनो वर्षा	... वियोगिनी—वर्षा	... ३१	... ७
ह्वै	... छ्वै	... ३१	...८, १३
बदराइ	... बदराह	... ३२	... ७

अशुद्ध रूप		शुद्ध रूप		पृष्ठ		पंक्ति
हेमना	...	हेमन्त	...	३२	...	११
छरि	...	छरी	...	३२	...	१३
कीन्ह्यों	...	कीन्ह्यो	...	३४	...	७
ककेर	...	कंकरे	...	३४	...	१२
ह्वै	...	छ्वै	...	३६	...	१०
और रङ्ग	...	औरै रङ्ग	...	४०	...	२
लागा	...	लागो	...	४१	...	६
नागिन, नागिनी	...	नागिनि	...	४३	...	१, २
हिये	...	हिय	...	४३	...	१४
जुरें	...	जुरे	...	४८	...	२
भरमें	...	भरमे	...	४६	...	११
लटकाए	...	लटकाये	...	५१	...	४
लैक	...	लैकै	...	५१	...	५
लचकावत	...	लचकावति	...	५३	...	१०
सँग	...	संग	...	५५	...	६

नोट—इन अशुद्धियों के अतिरिक्त और सामान्य अशुद्धियाँ जो रह गई हैं सो पाठक सुधार लेने की कृपा करें।

—लेखक